Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2020 SHISRRJ | Volume 3 | Issue 6 | ISSN : 2581- 6306

दलित जीवन की परम्परा का विकास

डॉ. गुंजन त्रिपाठी
1N/5C, तिलक नगर
अल्लापुर, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश,भारत।

Article Info
Volume 3, Issue 6
Page Number: 60-64
Publication Issue :
November-December-2020

Article History
Accepted : 10 Dec 2020
Published : 24 Dec 2020

सारांश :– दलित के इतिहास को जानने की कोशिश करे तो पायेंगे कि भारतीय समाज में प्राचीन काल से ही दलितों को पशु से भी घृणित दृष्टि से देखा गया है। इस समाज का मुख्य आधार वर्ण व्यवस्था है जिसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्ध चार वर्ण है। जाति–व्यवस्था का आरम्भ यहाँ से ही शुरू हो जाता है। शूद्र को सबसे निम्न दर्जे का माना गया और अन्य तीन वर्णों की सेवा का कार्यभार उसे सौंपकर दास कहा गया। अन्य वर्गों द्वारा इनका शोषण आरम्भ होने पर स्थिति और भी गंभीर हो गई। जाति, रंग, अस्पृश्यता, अछूत और कार्य–व्यवस्था आदि की दृष्टि से दलित को हीन भाव से देखा गया। जातियों और वर्गों में बंटे होने के कारण शूद्र सबसे घृणित माने जाते थे। समाज में जातीय विभेदों, असमानताओं, उच्चता, निम्नता, पवित्रता–अपवित्रता, धार्मिकता, अधार्मिकता की अभेद्य दीवारे खड़ी हो गई। इन्हीं असमानताओं के कारण अन्ततः दलित एवं अनुसूचित जातियाँ अस्तित्व में आई।

मुख्य शब्द :– दलित, जाति व्यवस्था, वर्ण व्यवस्था, कार्य व्यवस्था, आदि।

मध्यकाल में इन शूद्रों को अस्पृश्य कहा जाने लगा और कालान्तर में इन्हें पराधीनता, परवशता, सामाजिक–सांस्कृतिक भिन्नता तथा अमानवीय शोषण का शिकार बना दिया। आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, शैक्षणिक आदि स्थितियों में इनकी हालत अति दयनीय बन गई।[1] समाज में सबसे निम्न स्थिति होने के कारण इन्हें दलित कहा जाने लगा।

दलित समाज हमेशा अन्याय, अत्याचार और अमानतीयता का शिकार था। इनको समाज में सबसे निम्न स्थान प्राप्त था। सवर्ण लोग उनके शरीर को छूने में भी अपमान समझते हैं।[2] समाज अस्पृश्यता, जाति–भेद, संकीर्ण विचारों का अड्डा बन चुका था। स्वाधीनता के बाद भी भारत में अस्पृश्यता की भावना जोरों पर हैं। आज भी भारतीय समाज में भेदभाव व अछूत भावना ज्यों की त्यों हैं। हिन्दु समाज तो स्वतंत्र हो गया परन्तु अपनी मानसिकता को न बदल सका और दलितों को सम्मान और समानता का हक न दे सका।

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

डॉ. कुसुम यदुलाल लिखती है, ''धर्म–ग्रन्थों में शूद्रों या अस्पृश्यों के लिए जो व्यवस्था की गई थी, आज के वैज्ञानिक युग में भी भारतीय समाज पर उसका पूरा प्रभाव है। ये लोक समाज का निम्न कार्य करके दूसरे वर्ग के लोगों की सेवा करते हैं और उसके बदले में इन्हें मिलती है घृणा, उपेक्षा, लताड़।[3] 19वीं सदी के अन्त में और बीसवीं सदी के आरम्भ में दलित चिन्तकों ने सर्वप्रथम जाति, अस्पृश्यता, असमानता इत्यादि वैचारिक स्तरों पर प्रश्नचिन्ह लगाया। डॉ. अम्बेडकर, ज्योतिबा फूले ने परम्परा से चली आ रही इस व्यवस्था का विरोध किया और दलितों के सम्मान और समानता के लिए आवाज उठाई। डॉ. अम्बेडकर ने दलित जाति के मन में चेतना जगाई।

अस्मिता प्राप्ति के लिए दलित वर्ग को सर्वप्रथम समाज के उन अधिनायकों के खिलाफ आवाज उठानी होगी जो उन्हें नीच मानकर जीने का अधिकार भी उनसे छीन लेते हैं।[4] इन उन्नायकों के खिलाफ लड़ कर समाज के दृष्टिकोंण को बदलना होगा ताकि दलितों को उनके अधिकार प्राप्त हो सकें। अशिक्षा के कारण दलित जागरुक नहीं थे जिस कारण वे और दलित होते गये। शिक्षा के लिए मिले अधिकार ने उन्हें सचेत किया और ये अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए उठकर खड़े हुए। स्वतंत्रता के पश्चात दलितों ने पढ़ लिखकर साहित्य के क्षेत्र में भी प्रवेश किया जिससे दलितों को कुछ पढ़ने और अपने प्रति कुछ समझने का अवसर मिला। अध्ययन की सुविधा प्राप्त होने से दलितों को साहित्य रचना का अवसर भी प्राप्त हुआ। दलितों ने साहित्य में अपने पर हुए अत्याचारों का वर्णन तो किया परन्तु साथ ही समाज में व्याप्त इस कुप्रथा के अन्त और संघर्ष का बिगुल भी बजाया।

दलित समाज सदियों से पद दलित और उपेक्षित जीवन जीते आए है। शिक्षा के प्रचार एवं प्रसार ने इनके अन्दर जागृति लाई है। अपनी जातिगत अस्मिता की रक्षा के लिए आज यह वर्ग संघर्षरत है। जाति से दलित माने जाने वाले इन समुदायों का शोषण प्रत्येक स्तर पर हुआ है।[5] धर्म के ठेकेदारों ने इन्हें समाज में नीच के रूप में स्थापित किया और अछूत के रूप में इनका परिचय समाज को दिया। समाज की मुख्यधारा से ये समुदाय पूरी तरह कब गये। हिन्दी उपन्यासों में दलितों की सदयिओं से लम्बी शोषण परम्परा का चित्रण तो हुआ ही है साथ ही अपनी अस्मिता की प्राप्ति के लिए समाज में कई स्तरों पर किये जा रहे उनके संघर्ष का चित्रण भी हुआ है।[6]

दलित जीवन की परम्पराः–

दलित समुदाय को सामाजिक दृष्टि से सवर्णों द्वारा सदियों से नीच, अछूत और शूद्र माना जाता रहा है। उन्हें इंसान न मानकर केवल निम्न जाति माना गया और प्रताड़ित, अपमानित करके समाज से अलग ही रखा गया। जहाँ जातिगत आधार पर समाज में इन दलितों के साथ हो रहे भेदभाव का चित्रण मिलता है वहीं इनकी आर्थिक स्थिति का चित्रण भी मिलता है क्योंकि सदियों तक ये जातियाँ सवर्ण जाति की दया पर निर्भ रहीं। नौकरियों इत्यादि में आरक्षण के बाद अवश्य इनकी स्थिति में सुधार हुआ।[7] दलितों की सामाजिक स्थिति अच्छी नहीं है क्योंकि समाज का दृष्टिकोण इनके प्रति आज भी परम्परावादी है और उन्हें सम्मान और पहचान की दरकार है जिसके वे अधिकारी हैं।

दलित वर्ग को सदैव शिक्षा से दूर ही रखा गया क्योंकि धारणा यह थी कि पढ़ना–लिखना उनका काम नहीं, वे तो सेवादार है इसलिए इनके जीवन में ज्ञानार्जन का कोई महत्व नहीं। संविधान में दलितों के शिक्षा के अधिकार को सुरक्षित करने के बाद अवश्य इस स्थिति में थोड़ा परिवर्तन आया परन्तु समस्या यह थी कि सवर्ण समाज दलितों के इस अधिकार को पूर्णरूप से स्वीकार नहीं कर पाया जिस कारण इस क्षेत्र में भी उनकी अस्मिता का प्रहार होते रहे।

दलितों की धार्मिक परम्पराः–

दलित समाज के जीवन की बिडंबना है कि धर्म के विरुद्ध अनुयायियों ने इन्हें धार्मिक क्षेत्र से बाहर ही रखा। धर्म पर आधारित छूआ–छूत, पवित्र–अपवित्र इत्यादि अनेक बंधन स्थापित है। ओम प्रकाश बाल्मीकि, ''एक दलित के लिए धर्म एक डरावनी भयभीत कर देने वाली संस्था है जो जरुरत पड़ने पर एक दलित का इस्तेमाल तो करता है लेकिन उसके अस्तित्व, उसकी पहचान के प्रति असंवेदनशील है जो उसे एक मनुष्य मानने के लिए भी तैयार नहीं है।[8] धर्म के आधार पर दलितों पर अनेक पाबन्दियाँ हैं जिसके प्रभावस्वरूप वे न तो मन्दिरों में जा सकते हैं, न पूजा–पाठ कर सकते हैं।

क्योंकि दलितों के प्रति परम्परावादी और भारतीय मानसिकता कहती है कि उनके द्वारा ये कार्य करने से उच्च जाति के लोग, मन्दिर और शास्त्र अपवित्र हो जायेंगे। धर्म के आधार पर समाज में छूआ–छूत की धारणा ने स्थायी रूप ले लिया है।

धर्मान्तरण की समस्या दलित जातियों के जीवन की सबसे बड़ी दुविधाग्रस्त स्थिति है। धर्माधिकारियों ने उन्हें नीच कहकर हिन्दू धर्म से निष्कासित कर दिया परन्तु दूसरी तरफ यदि अन्य किसी धर्मों ने उन्हें अपनाने का निमंत्रण दिया तो भी उनकी धार्मिक स्थिति में सुधार नहीं हुआ। धर्मान्तरण भी समाज में इनको मान–सम्मान दिलवाने में पूरी सफलता नहीं पा सका। धर्म के आधार पर जहाँ समाज में दलितों के साथ हो रहे भेद–भाव का चित्रण उपन्यासों में मिलता है वहीं उपन्यासकारों ने कुछ ऐसे पात्रों का चित्रण भी किया है जो इस व्यवस्था का विरोध करते नजर आते हैं।

दलित जाति के अन्तर्गत भेदभावः–

दलित समाज स्वयं अनेक जातियों उपजातियों में बँटा है जिस कारण जातिगत भेदभाव का संघर्ष जहाँ उच्च वर्ग के साथ है वहीं अपने वर्ग के अन्तर्गत भी यह संघर्ष जारी है। दूसरी तरफ दलित समाज के जिस वर्ग ने पढ़–लिखकर समाज में अपने अधिकारों को प्राप्त कर प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति की है वह उच्च दलित वर्ग भी निम्न दलित वर्ग के साथ बुरा व्यवहार करता है।[9] इनकी अस्मिता प्राप्ति की यह पीड़ा दो धरातलों पर है एक तो सवर्ण समाज से और दूसरी तरफ अपने समाज के ऊपर उठ चुके दलित वर्ग से।

'जमीन अपनी तो थी' उपन्यास में लेखक ने नन्द सिंह और काली के संवाद के माध्यम से दलित जाति के अन्तर्गत किये जाने वाले भेदभाव का चित्रण किया है। जब काली नन्दसिंह को बताया है कि शहर में वह चमड़ा मंडी में चमड़ा कारखाने में कच्ची खाले होता था तो नन्दसिंह हैरान रह जाता है और काली से कहता है, ''हमारी बिरादरी यह काम नहीं करती। मुरदार ढोना, खाल खींचना, चमड़ा कमाना नीचों में नीच करते हैं, गाँव में होता तो तेरा हुक्का–पानी बन्द कर देते।'' इतना ही नहीं उपन्यास के एक अन्य प्रसंग में नन्दसिंह धर्म परिवर्तित कर मजहबी बने लोगों के विषय में कहता है, ``..... परि पच्छिम में मजहबियों के कोठे हैं। नीच जात है। शहरों में सिर पर गन्दगी ढोते हैं। जो सिख बन गए, वे मजहबी कहलाते हैं। हमारी बिरादरी की इनसे रोटी–बेटी की साँझ नहीं है।'' जिस प्रगति और जातिगत उदारता के लिए वे संघर कर रहे हैं उसी के शिकार होकर अपने अंतर्गत नीच मानी जाने वाली जातियों से भेदभाव करते हैं।[10]

दलितों की राजनीतिक स्थिति :–

दलितों के सन्दर्भ में राजनीतिक स्थितियाँ भी उनके जीवन को प्रभावित करती रहती हैं। राजनीतिक शक्तियों का प्रयोग बहुत बार इनके विरोध में किया गया था फिर सत्ताधारियों ने अपने स्वार्थ के लिए राजनीति का प्रयोग किया और इनके अधिकारों को ताक पर रख दिया। संविधान में इनके राजनीतिक अधिकार आरक्षित किए गए ताकि सत्ता में आकर ये अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व कर सकें।

'चतुरंग' उपन्यास में लेखक ने गैर दलित नेता गुलजार का चित्रण किया है जो चालाकी से दलितों के अधिकारों की बात कर अपनी नेतागिरी को भुनाता है। सामने से वह दलितों के अधिकारों के लिए लड़ता है परन्तु वास्तविकता ये है कि वह दलित युवक संतोषी को हथियार बनाकर ठाकुरों के विरुद्ध चुनाव लड़ना चाहता है– ''आखिर उसने एक चाल खेती और काफी न नुकूर के बाद दलितों में से एक नवयुवक संतोषी को चुनाव में खड़ा करने में सफल रहा।'' इस तरह गैर दलित नेता राजनीति की आड़ में दलितों का इस्तेमाल कर अपनी नेतागिरि चलाते थे। इसलिए गुलजार ने संतोषी को चुनाव लड़वाया था, उसकी मंशा इन शब्दों से स्पष्ट होती है– ''ठाकुर हरपाल सिंह को नीचा दिखाने, एक दलित के साथ चुनाव लड़ने के अहसास से उनके अन्तर्मनमें क्लेश व ग्लानि पैदा करके उन्हें गाँववासियों व अपनी निगाह से तुच्छ व सामान्य व्यक्ति साबित करने के उद्देश्य से उसे चुनाव लड़वाया गया था। भारतीय समाज में सदियों से यह उदाहरण प्रस्तुत है कि उच्च जाति के लोगों ने निम्न जाति के लोगों का शोषण किया है। पारम्परिक वर्ग विभाजन ने शूद्रों को पैर की जूती बनाकर रखा और उनका शोषण होता रहा। शोषण से पीड़ित व्यक्ति शक्तिशाली शोषक समाज के प्रति घृणा और द्वेष का भाव रखता है परन्तु अपने कमजोर होने के कारण वह यह पीड़ा सहन करता जाता है। आज दलित वर्ग जागरुक हुआ है क्योंकि शिक्षा के प्रसार और अपने प्राप्त अधिकारों के कारण उनमें अस्मिता बोध हुआ है और अस्मिता प्राप्ति के लिए वे संघर्षरत हैं।[11]

लोकगाथाओं का प्रचलन भी दलितों के जीवन का हिस्सा है। अपने बच्चों को लोकगाथाओं से रिझाना और ज्ञान देना इस समाज में प्रचलित है। 'पठार पर कोहरा' उपन्यास में पात्र रंगेनी अपने बेटे सोनारा को पाण्डुकी चिड़िया की कहानी सुनाती है तो वह सो जाता है। उसकी इस कहानी को गाँव में आया शिक्षक संजीव सान्याल भी सुन लेता है और सोचता है, ''पशु–पक्षियों की आवाजों–ध्वनियों में भी कहानी कैसे ढूँढ लेते हैं ये जंगल के लोग.....?

दलितों के जीवन की यह विडम्बना है कि वे शुरू से ही शोषण का शिकार होते आये हैं। शोषण के शिकार ये लोग जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं को भी पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं कर पाते। सबसे बड़ी दुःख की बात यह है कि व्यवस्था स्वयं इसमें भागीदार है। उनको शोषित करना ही गैर दलित समुदाय अपना अधिकार मानता है क्योंकि पिछड़े और गंवार माने जाने वाले समुदाय को कोई आगे आने नहीं देना चाहता। उपन्यासकारों ने दलितों का विभिन्न स्तरों पर होने वाला शोषण उपन्यासों में चित्रित किया है जो स्पष्ट करता है कि दलित जानवरों से बद्तर जीवन जीने को विवश है। विवेच्य उपन्यासों में दलित समाज का शोषण करने वाले अंग्रेजों, भारतीय जमींदारों और ठेकेदार, कंपनियों के मालिक, पुलिस और भ्रष्ट अफसर इत्यादि सभी का चित्रण हुआ है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. 'नया ज्ञानोदय' संपादक–रवीन्द्र कालिया, प्रकाशक भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली पृष्ठ–99, पर भारत भारद्वाज का आलेख। अंक–मार्च 2010

2. उत्तर–आधुनिकतावाद और दलित साहित्य, कृष्णदत्त वालीवाल, प्रकाशक वाणी प्रकाशन 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली – 110002, पृष्ठ–146
3. टूटने के बाद, संजय कुंदन, प्रकाशक भारतीय ज्ञान पीठ, संस्करण, वर्ष 2009, पृष्ठ–26
4. 'नया ज्ञानोदय', संपादक रवीन्द्र कालिया, पृष्ठ–99, अंक– मार्च, 2010
5. विश्वनाथ त्रिपाठी, 'पाखी', राजेन्द्र यादव विशेषांक, सितम्बर, 2011, पृष्ठ–164
6. रणेन्द्र–ग्लोबल गाँव के देवता, भारतीय ज्ञानपीठ, लोदी रोड, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण : 2010, पृष्ठ–18
7. मैनेजर पाण्डेय – नया ज्ञानोदय, संपादक रवीन्द्र कालिया, भारतीय ज्ञानपीठ, अंक–97, मार्च 2010, पृष्ठ–72
8. हरिनारायण ठाकुर– दलित साहित्य का समाजशास्त्र, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली दूसरा संस्करण– 2010,पृष्ठ–338-339
9. विजयशंकर उपाध्याय, विजय प्रकाशक शर्मा, भारत की जनजातीय संस्कृति, वहीं, पृष्ठ–35
10. ध्रुव नारायण अग्रवाल – संपादकीय, नवभारत, दैनिक समाचार पत्र, दिनांक 21 सितम्बर, 2011 पृष्ठ–4
11. विभूतिनारायण राय – दैनिक भास्कर, दैनिक समाचार पत्र, दिनांक, 2 अक्टूबर, 2011, पृष्ठ–8